

अपने जैनमुनिओसे प्रार्थना

अपने अपने गुरुओं और बड़े बूढ़ों नामसे पुजती आनेवाली प्रचलित ३२ सम्प्रदायोंसे जन समाजको आजतक भारीसे भारी नुकसान उठाना पड़ा है। शायद पहले इससे कुछ लाभ पहुंचा हो ? मगर इस अनाश्रयक घाडांन्दी, सम्प्रदायवादकी इस नव युगमें आवश्यकता नहीं है, इन सब सम्प्रदायोंको मिटाकर मात्र एक शातृपुत्र महावीर भगवान्क नामपर अपनी सम्प्रदायका नाम रखकर ४६३ साधुओंको सच्चा अनेकान्तवादी धन जाना चाहिये जिससे जैन समाजको निगरी हुई शक्तिका पुष्ट समूह हो सक। अपने पुराने बड़े बूढ़ोंक नामका मोह हमें अब नाम मात्रको भी न होना चाहिये। हमें भगवान् महावीरकी वास्तविक देन है और वह सम्प्रदायको मिटाकर एकता और संगठन तथा प्राणी मात्रमें प्रेम करनेसे ही पूरी की जा सकती है।

प्रार्थी—

शातृपुत्र महावीर जैन सपीय—

पुष्क भिक्षु

॥ ॐ ॥

नमोऽर्चुणं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स ।

महावीर निर्वाण और दिवाली



MAHAVIR IS MINE

Fade fade each earthly joy, Mahavir is mine,
Break, ev'ry tender tie, Mahavir is mine,
Dark is the wilderness,
Earth has no resting place,
Mahavir alone can bless, Mahavir is mine

Tempt not my soul away, Mahavir is mine,
Here would I ever stay, Mahavir is mine,
Perishing things of clay,
Born but for on brief day,
Pass from my heart away, Mahavir is mine

Farewell ye dreams of night, Mahavir is mine,
Lost in this dawning light, Mahavir is mine,
All that my soul has tried,
I left but a dismal void,
Mahavir has satisfied, Mahavir is mine

Farewell, mortality, Mahavir is mine,
 Welcome eternity Mahavir is mine,
 Welcome, O loved and blest,
 Welcome sweet scenes of rest,
 Welcome my Saviour's breast Mahavir is mine

प्यार धारपुत्रो । यह जो दीपाली पद्य है इसका ज्ञानु पुत्र
 महावीर प्रभुष निव्वाणस साथ क्या सम्बन्ध है ? इसे निरदिष्ट
 करने के लिये और श्रीज्ञातनन्दन वार प्रभुस उत्तम जीवनस हम
 सजसो क्या बोध ग्रहण करना चाहिये ? इसे निचारनकी आज
 हमारो प्रबल इच्छा है ।

दीपमागका प्रसंग प्रति वर्ष आता है और चला जाना है तथापि
 यह प्रसंग हमे क्या सूचित करता है, उसका निचार करनका
 नरपुगन आज कर्ण हैं ?

आज तो - अच्छे अच्छे भोजन करना, पशानका और सुन्दर
 सुशोभित वस्त्रोको पहनना, अथवा अनन्य प्रकारक भोग त्रिलासकां
 सामप्रियामे लुप्त रहना, अनक तरहके खेल रचना, कहीं गकान्तम
 जाकर मित्रो की गोष्ठीम जुआ खेलना, वस इन सजस नीपाली पद्यका
 माहात्म्य आकर समा जाता है ।

यदि इतनमे ही कोई दीवाली मानता है तो उस मनुष्यकी कर्ण
 भूल हो जाती है । ऐसी भारी भूल न हान पाव इसलिय नीपमाला
 पद्यकी उत्पत्ति किस प्रकार हुआ, इसके सम्बन्धमे जेनोका क्या
 मान्यता है यही हम विचारग ।

हमारे चरम तीर्थंकर श्री वीर प्रभुका जन्म इन्दी सन पूर्व ५६६
मे हुआ था ।

जब व प्रभु माताकी उदर कन्दरामे आये थ तब उस समयस
ही उन्होंने यह निश्चय किया था कि "जहानक मेर माता पिता
जीवित रहेंगे वहा तक मैं दीक्षा न लूँगा ।"

यद्यपि दीक्षा लेना सभके हितकी साधना है, सब शास्त्रकारोंने भी
यही माता है, परन्तु यदि वही दीक्षा माता-पिताके इन्त्यको उद्देग
पहुँचा सकती है तब उसका स्वीकार करना उनके सामन किस
प्रकार न्याय सगन समझा जाय ?

इन उत्तम विचारोको लेकर अच पुत्रपोकी माता-पिताकी भक्ति
करनका उत्तम नमूना दिलानेकी इच्छासे व स्वयं घरमे घरजागीकी
दशामें भी २८ वर्ष तक रह ।

तथा अपने भाईके आप्रहसे भा दो वर्ष घरमे ही अधिकतर
गहन्य धर्मका पालन करत रहे थे ।

तदनन्तर उन्होंने इस घटनासे ससार वासियोंको भाइकी सेवा
करनेकी तथा उस सुग्री बनानेकी भी पूर्ण शिक्षा दी ।

तीसव वर्षमे आपन दीक्षा स्वीकार की और १२ वर्षतक अनेक
बाइ तथा अभ्यन्तर तप तपत रह ।

नाना भातिन काम, मोघ, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, इन्द्रिय
विषय, न माननगले चचल मन, आदि अनेक मानसिक शत्रुओंका
महार किया, सांसारिक पदार्थोंकी असारता एवं असत्यताका खून
अनुभव किया ।

ध्यान मग्न रहकर आपकी आत्माने—निजम परमात्माका अनुभव किया, इधर-उधरकी भटकनाओंसे हटाने संसारको भी अपनेमें सब कुछ पानेका पूर्ण संकेत करा दिया ।

सब भावोंको साझानु क्तानेवाले केवलज्ञानको प्राप्त करनेके अनन्तर अपन उस अनन्त ज्ञानमेसे श्रुतज्ञानकी गंगाका लाभ औरोंको दान लिये गांव गावमे स्वयं विचरे ।

और जहां तहां दया और सत्यका उपदेश देकर अनेक पुण्योंको हिंसक माग और पाप खरिदसे धचाया, तथा उनको जैन धर्मानुयायी बनाया ।

इस प्रकार तीस वर्षतक परोपकारक निमित्त ही आपन अपने जीवनका व्यय किया । अधिक क्या कहें सब प्रकारसे उनका निम्न्वार्य जीवन था।

७० वर्ष बाद अर्थात् ६० सनसे ५० वर्ष पहले अपापा नगरम आप पधार, निर्वाणका समय समीप आ गया है यह षवलज्ञान द्वारा जान लिया, अत वीर प्रभुने अन्तिम समयका बोध भी जनताको दिया और शुद्धध्यानकी श्रेणीको पारकर भगवान् ज्ञानपुत्र महावीर प्रभुने निर्वाण प्राप्त किया ।

य समाचार आस पास राजाओंको विदित हो जानने कारण प्रमुकी बन्ना करनेके लिये उस समय १८ दशोंक राजा भी आ पदुचे थे ।

ये सब बात आपन लिये कार्निवक धर्मी अमासस्याके दिन २८ गइ थीं, जिस घटनाको आज २४५४ वर्ष हो जात है ।

उम समय उन भिन्न भिन्न दशस आये हुए राजाओंने यह निम्न विचार किया कि—

ओह ! भगवान् कवलज्ञानकी मूर्ति थे, उनका निवाणसे आज भारत जगत्में भाषज्ञान (दीपक) का नाश हो गया । अतः भाषर्दीपकका हम किसी तरह पुन स्मरण हो इसलिये दीपक जलानेका प्रया प्रचलित कर दी ।

तब ही दीपमालिका (दीयाली) का पर्व संसारमें प्रचलित होनेकी मान्यता जैनामें है ।

प्रिय धान्द्यो ! हमने श्रीमन्महावीर पितामहके जीवनको संश्लेषमें कहा है । परन्तु उनके जीवन चरित्रसे हमें क्या सीखना चाहिये, जहाँतक हमारी समझमें यह न आ जायगा वहाँतक उस जीवनका प्रभाव हमपर न पड सकेगा ।

अत उनके चरित्रमेंसे लेने योग्य शिक्षाएँ और आजकलके जैनोंके द्वारा करणीय कर्तव्य इन प्रश्नोंपर हम यथार्थ विचार करगे।

समभाव

महावीर भगवान् जीवनका सूक्ष्म रीतिसे अपनलोकन करनेपर और उसपर भी यदि धारीकीस विचार करें तो उसके उत्तम गुण हमारी आर्यों आग आ खडे होते हैं । जिनमें मुख्य गुण उनका समभाव—समान दृष्टि है ।

उनकी समान दृष्टिमें अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, परन्तु यहाँ हम उनका एक ही दृष्ट और पुष्ट दृष्टान्त देंगे ।

डक मारनेकी बुद्धिसे पैरको छूनवाले चडकौशिक नागकी, एव

नमन करनेकी बुद्धिसे मस्तकको पैरसे स्पर्श करनेवाले इन्द्रकी ओर भी जिनकी समान बुद्धि है, ऐसे वीरकी समभावदृष्टि निस्सन्देह प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। केवल उनकी जीवन अनुकरणीय ही है इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने इस प्रकारका उपदेश भी दिया है। यह बोध किसी आचार्यने 'सम्बोध सत्तरी' में प्रकट भी किया है। यथा—

सेयरो वा आसवरो वा बुद्धो अतो अहवा को वा।

समभाव भाविमप्पा, ल्हइ मुफ्फो न सदहो ॥१॥

भावाय—चाहे कोई मनुष्य दिगम्बर हो, श्वेताम्बर हो, बौद्ध हो अथवा अन्य किसी धर्मका भी चान् अनुगामी क्यों न हो, परन्तु यदि उसकी आत्मा समभाव बस गया है तब तो वह अवश्य मुक्ति पालेगा हमें जिसपर निस्संदेहता दृढ़ विश्वास है।

इसी दृग्से अष्टाश तरिणीम भी एक आचार्य लिखता है कि—श्वेताम्बरमे, दिगम्बरमें, पश्चात् और तर्कवादम मोक्ष नहीं है और कपायोंसे मुक्त होना ही सही मुक्ति है।

“और कपायोंसे मुक्त होनेका कार्य प्रत्येक आत्मा कर सकता है।”

इस प्रकार जैनाचार्योंन भगवान् वर्धमान प्रभुके पीछे चलकर समानदृष्टि रखनेका बोध दिया है।

करुणा

दूसरा गुण वीर प्रभुका करुणा है, जो सरस महान् है। जिसकी

इस जगत्‌में तुलना नहीं की जा सकती, यह करणा नामक गुण समझें वड़ा है।

जगत्‌में जितने भी महान् पुत्र हो गये हैं व सत्र करणाक गुणसे ही प्रसिद्धि प्राप्त है। सत्र गुणोंका आधारभूत करणाका गुण भगवान्‌में कितने अंशमें प्रगट हो गया था, इसका ठीक विचार तो इन शब्दोंमें किस प्रकार किया जा सकता है? तथापि थोड़ेसेमें एक छोटासा दृष्टान्त देकर बतानेका यथाशक्य प्रयत्न करूँगा।

एक समय पटाल नामक ग्रामक पाम धामे श्रीमहावीर प्रभु कायोत्सर्ग करके ध्यानमें मग्न हो रह थे। आपन ध्याकी स्थिरता और मनकी दृढ़ताका अनुभव अवगिज्ञान द्वारा दृश्यकर टटन, एक दिन अपनी सभामें आपकी प्रशंसा की। तथा स्तुति करने आपको नमस्कार भी किया। और एकत्र गेह उठा कि—

अहा! महावीर प्रभुका अनुपम धर्म है? उनके मनकी स्थिरता कितनी असाधारण है? उनकी विचारशक्ति कितनी उच्च है? आपके रोम-रोममें करणाका निजना शान्त श्रेष्ठ उद्भूत है? वन्य है इस प्रभुको? जिसने पञ्च कोट देव का मनुष्य नहीं है जो अपना सारा बल ख्याति इस प्रभुके अतिशक्तिमान् कर सका?

ये प्रशंसाक शब्द 'भगवन्' शब्द सुनकर अतिशयोक्तिपूर्ण भासमान होनेक कारण उस प्रभुके शरीरके अन्दरके लिये बहाने चल निकला। जगत्‌में शान्तिपूर्ण जीवन ही मकत है जिससे सन्ताप, परित्याप और श्रेष्ठ नैतिकता हो ऐसे प्रत्येक साधकोंमें उसने प्रभुको मन्त्र-मन्त्रों से उद्भूत भी करने न रहने

कट्टरसे कट्टर शत्रु भी वैसा काम न कर सक एस निर्दय और घास देनेवाले उपद्रवक हातान्दनपर किय । परन्तु जब उसे इतन पर भा सफलता न मिली और प्रभुक मनकी निश्चल वृत्तिका जरासा भी भग न दरकर उसन प्रभुको किसी प्रकार मोह उत्पन्न करनके लिये शृङ्गार आदि प्रयोगोंकी उनपर आजमाइश की । मगर जलक ऊपर अग्निक ताप प्रहारकी सन्श उनकी सब चेष्टाएँ वृथा गई ।

इस तरह एक दो दिन नहा बल्कि छ मास पर्यन्त श्रीवीरप्रभुको उसन अनक प्रकारने उपसर्ग दकर सताया परन्तु प्रभु तो प्रभु ही रहे । व अपन प्रभावस जरा भी न ढिगे । अन्तम वह अधमदव प्रभुने सामने हार मानकर चला गया ।

बन्धुओ ! उस समय प्रभुके मनमे कितन उत्तम विचार उत्पन्न हो गये थे । उन विचारोंका कभी आपको खयाल भी आता है ? प्रभुकी उस समयकी विचार श्रेणीका रहस्य समझनके लिये कभी आपने प्रयत्न भी किया है ? यदि इसस आप अनजान हो तो मर साथ आप विचार प्रदर्शन खलिय और मैं आपको उस समयका प्रभुका हृदय सम्यन्धी सम्पूर्ण चित्र तुम्हार मनकी आलने सम्मुख रखकर पेश कर दू ।

त्रिधियन धर्म संस्थापक जिसिसत्राइष्टका महत्व और उसका उपदेश न समझनेवाले उस समयक यद्दी जब उस महापुरुषको ब्रह्मन्तभङ्गे पास ले गय उस समय उस दुयालु मन्त्रात्मान उनपर जरासा भी क्रोध न करके, अथवा यद्दी लोगोंपर तिरस्कारकी दृष्टिम उठे

बिन्दुल भी न दसा बल्कि उनपर दया लाकर ये उद्गार निकाले थे कि—
 “Oh Father Forgive them they do not know what they do” “हे दयालु पिता । इन यूद्धी लोकोंको तू क्षमा कर ।”
 वे इसके लिये क्या करते हैं इसकी उसे विचारको खबर भी नहीं ।”
 इन शब्दोंके यह जानक पहले पांच सौ वर्ष पूर्व करणमृति
 श्री वीरपरमात्माने सगमदबके सम्बन्धमें जो उद्गार निकाले थे व
 प्रत्येक मनुष्यको अपने हृदयमें लिखकर रखना चाहिये उन्होंने उस
 समय विचार था कि—

“अहो निष्कारण ही अन्य जीवोंको दुःख देनेवाला इस विचार
 पामर जीवकी क्या गति होगी ?”

ऐसा वात है कि—मर जैसे जीव जिनको कि औरोक
 आत्माका कल्याण करना है ? और जीवोंको दुःखोंसे मुक्त करना
 है, व भी इस जीवको क्रूर आचरणसे इसका हित नहीं कर सकते ।
 मेर मनमें रह-रहकर यही भाव आता है कि—मेर हाथसे इसका
 कुछ भी तो भला होना चाहिये, परन्तु यह भला होनेके बदले उसने
 घातकी विचार और मुझे दुःख देनेवाले कार्यसे यह उल्टा फमसे
 रखा गया है जिसका मुझे परम खेद होता है कि इस विचार पामर
 जीवका यथा समयमें कुछ भी हित न कर सका ।” ऐसे विचार
 उनके हृदयमें स्फुरणा दरह थे कि—उनकी आर्योंसे अश्रुप्रवाह
 बह निकला । इसी कारणसे योगशास्त्रमें श्रीवीरप्रभुकी स्तुतिके
 सम्बन्धमें यह लिखा गया है कि—

“शृणापरापेऽपि जने, कृपामन्थरतारयो ।

ईषडाप्यार्द्रयोर्भद्र श्रीवीरजिननत्रयो ॥१॥

अपराध करनेवाले प्राणि समूहपर न्याय नम्र और आसुओंसे भीम हुए जीव भगवानके नेत्र सबर लिये कृत्याणकारक हों ।

सत्यशोधक वृत्ति

श्री ज्ञातृपुत्र महावीर प्रभुन बोधस यह स्पष्ट फलित है कि— लोकमें सत्यशोधक वृत्ति चिसस प्रगट हाती है ऐस ढगरी विचार-श्रेणीना ही उन्होने बोध दिया है । लोक अमुक सत्यको मान ल इसकी अपथा उनमे सत्यशोधक वृत्ति जागत हो यह उनक लिय विशेष हितकर है । इसी दृष्टिकोणमे ही स्याद्वाच मतका स्थापन किया गया है ।

स्याद्वाचका दूसरा नाम अनकान्तवाद है । यदि मयेपम कहा जाय तो एक ही वस्तुको अलग-अलग विशाल दृष्टिबिन्दुसे देखनकी रीति हा अनेकान्तवाद है ।

एक ही विषयको अलग-अलग दृष्टि बिन्दुसे दया पाय तो वस्तु कैसी सिद्ध होता है, इमाका विचारना, और फिर उस वस्तुन स्वरूपको मानना, उस वस्तुन ज्ञानकी पानकी और मत्यर समीपमें आनकी उत्तममे उत्तम विचारक रीति यही है ।

आजकल जिस प्रकार थियोसोफीकल अलग अलग धर्मोंको भिन्न भिन्न दृष्टि बिन्दुसे अभ्यास करके सत्यको स्वीकार करत है, वही प्रयत्न (किसी विलक्षण और भिन्न स्वरूपमें) श्री महावीरके उपदेशममे प्रकट होकर निकलता है ।

और इसी कारणसे श्रीमद् आनन्दपनजी जिनेश्वरक स्तवनमें श्रुतान हैं कि—“पद्दर्शनं जिनं एमं भणीजे जी ।”

इस प्रकारकी मत्स्य दृष्टिवाला कोड भी पथ, मन या सम्प्रनाय वाले साथ विना या कलह नहीं कर सकता। वरिष्ठ जितन अशमे मत्स्य जिनना भी है तम उतने ही अशमें तममेमे स्थीकार कर जेना है।

इम म्यादात्त मतकी उतमना दशानेका इन समय प्रसंग नहीं है, नगापि इनना तो अग्रश्य ही जानना चाहिये कि—जिम पुत्रपने म्यादात्त मतना यथार्थ स्वरूप जान लिया हो, वह मनुष्य किसी अपनामे अमुक विषयमे सत्य है। और वह विचार करनका प्रयत्न करता है। जिमन एमे पुत्रपना ह्य विशाल और उन्नत होता है।

और होना भी यही चाहिये, पर यदि न हो तो उमीचा दोष है म्यादात्तना नहीं। यह मरा मन्तव्य है।

मन अपनाओस सत्यका अग्रलोकन करना चाहिये। एम उच मतन माननका दावा करनवाले लोक यदि अमुक अपक्षाको लेकर चिपट बैठ और बाकीकी अपगाओको असत्य ठहरानेके लिये निकड पड तो उम जैसा व्यक्ति उम सुन्दर मतको लजित करनेकी अपत्रा और क्या कर सकता है ? ऐस पुरुषाके हिनकी कामनामे अर्थ ही, वीर प्रभुन उपदेश दिया है कि—

“सत्यशोचक बनो, मत्स्यके पीछे चलो, और अलग अलग दृष्टि विन्दुस—(अपनामे) हरणक मस्तुकी परीक्षा कर दरो।”

श्री वीर भगवानम इतने अधिक गुण हैं कि—यह जीभ और एखनी उनको बनानेमे असमर्थ हैं। किसी कविने कहा है कि—

असितगिरिमम म्यान्त्रजल सिन्धुपात्र,
 सुरतस्वर शारदा लेखना पत्रमुर्व्वी ।
 लिखति यन्ि गृहीत्वा शारदा सत्रकाल,
 तदपि तत्र गुणानां वीर । पार न याति ॥१॥

भावार्थ--समुद्ररपी दानम, मरु पर्व्वत जिनना स्याही डाली जाय, कल्पवृक्षकी शारदाओंकी कलम बनाइ जाय, पृथ्वी कागजकी तरह काममे ली जाय, और शारदा सदेव लिखनका काम किया कर तत्र भी ह वीर । तत्र गुणका अन्त न आ सत्र । तत्र मर जैसे पामर और अज्ञान जीव थोडेसम क्या कुछ बयान कर सकत ह ? तथापि संक्षेपमें बनावूंगा कि - सत्र गुण उनम देवीगुण थ ।

वे वीर प्रभु मनुष्य थे उनम मद्या मनुष्यत्व था । परन्तु पूर्णता प्राप्त मनुष्य थे । व जिन थे, उन्होंने अपने शरीरमे रहनवाये तथा मनम रहनवाल तुच्छ और पाशव्यम तथा विचारपर विजय प्राप्त की थी । जनकी दृष्टिम व ईश्वर भी थ । उनम किमी प्रकारकी त्रुटि और न्यूनता न थी । व सवाङ्ग सम्पूर्ण थे । परन्तु लोक इस विशेष भक्तिकारण समझग ।

इन सत्र गुणोंका वर्णन तो किया, परन्तु उन सत्र गुणास परिचित होकर हर्म क्या करना चाहिये, क्योंकि ज्ञानक अनुभार बताव न हो तो ज्ञानस लाभ क्या ? इनक चरित्रस हम जनोंको तथा सकल मानव बन्धुओंको क्या क्या सार लेना चाहिय इसपर जरासा विचार करग ।

वीर प्रभुने आत्म-स्वरूपका अनुभव किया और परमात्मपद प्राप्त

किया, और कार्तिकी अमावस्याको इस नक्षत्र देहका त्याग किया। उन्होंने जिस अमूल्य ज्ञानका उपदेश किया है, और अपने परोपकारी और नि स्वार्थी जीवनमें उत्तम गुणोंका नमूना जगत्को प्रकट कर दियाया है उस ज्ञान और गुणमें हमारे करन योग्य क्या २ कार्य हैं प्रथम यह अवश्य विचारणीय है।

हमारे जैन वाचव श्रमणोपासक आज प्राय व्यापारी हैं, व्यापारी नित्य प्रति सपेरे और सांक्र लेन-दान करते हैं, और उमरा नफा नुकसान शोधकर जोड़ देते हैं, और दीवालीकदिन सार वर्षभरका आय व्यय जोड़कर नतीज वर्षमें प्रकाश करते हैं। इसी तरह महाजीर भगवानने भी इस सप्साररूपी व्यापारकी दुकानमें वर्षके अन्तमें 'आत्म निरीक्षण' करते हुए बताया है कि - ज्ञान, दर्शन और चरित्ररूपी तीन श्रेणोंका तुम्हें लाभ मिला है।

जिस वस्तुमें प्राप्त करनेको पूरा आवश्यकता थी वह अब मिल गई है। साध्य वस्तुकी साधना भी कर ली गई और अब हम उस महान् गुणके अनुयायी भी कहलाने लगे हैं। और 'वीर पुत्र' जैसा मान्य इल्काव भी लेना चाहत हैं। तब फिर उस महान प्रभुके पद चिह्नक पीठे चलकर अन्तिम १२ मासके आत्मपथमें कितना प्रवास कियाहै, वह वर्षके अन्तमें अवश्य विचारणीय है।

बन्धुओं! पहले बनाया जा चुका है कि— जैन ज्ञानि व्यापार चरनना कार्य करनसे प्रसिद्ध है। यदि हमें एक पाईका हिमाय न मिलता हो तो आधा राततक दिया जलाकर बैठ रहत हैं, और हिमाय ठीक मिलनेपर ही सत्तोप प्राप्त करत हैं। लाभ और हानिका

पूर्ण विचार करके लाभही तरफ जानेवाली बणिक् बुद्धिमें लिय यह अभिमान और गौरवभी धान है। तब फिर हमें बपर अन्तम दीपमालाके पवित्र दिनोम इस प्रकार विचार करत करत आत्म-निरीक्षण करना भी अत्यावश्यक है।

हमने अनेक दिन-दिन गुणाका वृद्धि का है ? परोपकार, दया, सहनशीलता, चितन्द्रियत्व, समभाव आदि नई नई गुण जो कि महावीर भगवानमें सहज थे, उन गुणोमें कितना गुण इस वर्षमें प्राप्त किया ? उन्हें पानने लिय क्या क्या प्रयत्न किया ? अथवा अपने दिन-दिन दोषोंको दूर किया ? और दिन-दिन नोपायो दूर करनेमें प्रयत्न है ? प्रयास करते समय क्या-क्या बाधाएँ उत्पन्न हुई ? और क्या हुई ? और उन बाधाओंमें सामने हमने कितनी बाधा प्रशिक्षित की ? और कितने अशम फायरनाका सपने किया ? अन्य मानवोंके कितना सहयोग किया ? उनमें कितनी सद्गानुभूति प्रकट की ? अपने धर्मके क्षेत्र कितना विशाल किया ? इतर समाजको कितने प्रमाणमें सम्मिलित किया ? उनमें कितना पुष्पल व्ययहार साधन किया ? सादा जीवन कितने प्रमाणमें बनाया ? हमने कितने स्वतन्त्र धनानमें कितना त्याग किया ? मानव समाजके कितने दिने हुए अधिकार उनको वापस मिलाय ?

इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टिमें प्रत्येक मनुष्यको विचार करना चाहिये, और जिस व्यापारमें लाभ न हो, अथवा हानि होती हो ऐसा व्यापार कौन तीर्थ दृष्टिवाला सज्जन पुन पुन किया करेगा ?

आलोचना

अर्थात्

सांस्कृतिक क्षमा प्रार्थना

वीर दान ना बचनो तणा, अवला कीधामे अर्थ ।
युक्ति करी मन वालियु, वयकीधी व्यर्थ ॥

त मुक्त मिच्छामि दुक्कड ॥१॥

साधु शिक्षा दीधी घणी, जणसे साठे दिन ।
पणह वस्त्र पत्थर बन्धो, ययो काइ नन भिन्न ॥२॥
नाम प्रकृत श्रावक रह्यो, कामो सावज वंस ।
दीकरीनो लीधो दोन्डो, तण परण्यो थइ रुश ॥३॥
गाय गघेटी थी गयो, तिर्य्यंच थी पण वेद ।
ण्केन्द्रिय सम थड रह्यो, आशु जैन विवेक ॥४॥
आरी अपासर मानमा, कीवी ठेलाठेल ।
समना उडाडी सर्वनी, उलटो कीधो मेल ॥५॥
जैन ययो पण घश पड्यो, पाच इन्द्रियन हाथ ।
तजवानु त मै आदर्यु, आभे नात्ती राथ ॥६॥
धम नो मर्म जाण्या विना, निन्दा किधी अपार ।
परधर्मनी टाप टीपमां, मोह्यो वार हजार ॥७॥
श्रद्धा विना तप श्रत कख्या, लाडु लेवा इनाम ।
जरा मोटाड मा मरी रह्यो, सोथु मोत्र इनाम ॥८॥

मार ममत रजिया कन्या, घर संवनी मांय ।
 नजीवी घातन कारणे, भद्र पाहुया ज्यां त्यांय ॥६॥
 श्रावणनो भव भागवु, कोइ पूर्वना पुण्य ।
 पणम फर्ज तणु कदी उतासु नव ऋण ॥७॥
 पुत्र थइ नव साक्षज्यो, मान तान रिरर ।
 नारी लइ नोरसो थयो, दाधा दुःख अनक ॥११॥
 'भ्रान' थइ मै रोपिया, फलेश द्वेष ना वीन ।
 बपुमा छेटां पटावियां शर्म समज्यो नहीज ॥१२॥
 'नाथ' थइ निर्लज पण, मायों नारीने मार ।
 शान्त पण शीखज्यो नहा धमाधर्म विचार ॥१३॥
 'वाप' वन्यो पण वालनी लीधी नव समाल ।
 धर्म विद्याना दान विण, रारज्यो वालनो वाल ॥१४॥
 'ससरो' थइ मै पापिण, बहुनी लूटा लज्ज ।
 घोळामा नारसी धूलन, भयों पापनो भार ॥१५॥
 'नोकर' निमकहराम मै, लीधी लांच हराम ।
 शेठन

शिष्य बन्यो गुरुराज थी, कीर्धा गर्व गुमान ।
 शीर न ज्ञान श्रमणे सुण्यां, रह्यो छेक अज्ञान ॥२०॥
 आरसे थकी मैं कोई दिन, न कर्युं गुरु दर्शन ।
 वाच्यु न सूत्रक शास्त्र कइ, प्रिया माहि प्रसन्न ॥२१॥
 कान नइ कथनी सुणी, प्यारा प्यारी नां गीत ।
 शास्त्र कथा सुणतां मन, ऋच आरी गचिन ॥२२॥
 प्रभु रसने चार्य्यो नहीं, रमना थी कोई वार ।
 प्रभु कीर्तनने स्तवनमां, साचवणु मुखद्वार ॥२३॥
 फूल गुलाब अतर तणी, लीधी मैं बहु गव ।
 सन्त चरणनी रज तणी, नव लीधी सुगन्ध ॥२४॥
 काया करी कुर्वांन मैं, परनारी पलग ।
 जप तप व्रत नव आदया, संब्यो नव ससग ॥२५॥
 'वपारी' थइ मैं थइ लट्या, कूडा नामान लेख ;
 तोला मापाने श्राज्यां, लज्ज्यो थापक भप ॥२६॥
 धोलू कईने चालु कई, करी मालमा मेल ।
 चोर लगाने साथ दऊ, आ शु जैन रिपक ॥२७॥
 नीच संग घडी स्वार्थने, साध्यो मारी रांक ।
 नर्क टिक्किट लीधी हाथमां, सोयु नवटांक नाक ॥२८॥
 हुकुम छते न बाधो शक्यो, धर्म घघानी पाल ।
 रक गणे छरी थापरी, कइक घाल्या कुचाल ॥२९॥
 वेठने वेरा थगारिया, नाच्यो नीचने हाथ ।
 थोडा पैसान कारणे, भरी नरकनी बाथ ॥३०॥

पग पण वाका चालिया, अवला चलाव्या हाथ ।
 अवलाइमां अथडाई मुओ, अग अदारे वांक ॥३१॥
 बालपणुं सोयु खेलमा, जीवन जोरु माय ।
 घडपणम हावो थयो, पण चाले नही काय ॥३२॥
 'स्त्री करती'ती धर्मने, दतो विग्गदान ।
 कुची हती मुक्क पास त, अटकावीं करी सान ॥३३॥
 लोभी थई मै नव कयो, थावक नो उद्धार ।
 जैनशाळ आदि निन्दीने, भयो पापनो भार ॥३४॥
 श्राविक्का लाभना काममां, कयो रोप अपार ।
 दतां दानम वारिआ, छुट्टू ते केणोवार ॥३५॥
 देखू नजर दुःख पामता, मारा बधु तियंच ।
 शक्ति छतां मडागांठ थइ, दान दीनु न रच ॥३६॥
 धन मारु तो घस्थु रहू, नाव्यु साथ लगार ।
 तोय अटकाव्या पारणां, सवमां फीधो खार ॥३७॥
 भूखे मर मारा बधुओ, धधा विण नाचार ।
 नजर निरत निहारियां, हायो नव ठल भार ॥३८॥
 हू जम्ये जग सद्द जम्यु, मार धन स्थाने स्थान ।
 हू हाक्य जग हाकियु, हू शानी थीं ज्ञान ॥३९॥
 पटी पटारा पूण भयां, धन धान्य चिकार ।
 पाद्धारल्या मुक्क वन्धुओ, उलटो दइ धिकार ॥४०॥
 छटक्का छल करिने कहू, अन्तराइ योग ।
 अन्तराइ विचारी शु कर, मन मलु ये रोग ॥४१॥

अपग अनाथ पशु तणी, लीधी न मै संभाल ।
 अपग पशु ररालने, बल्टी दीधी गाल ॥४२॥
 नरकराना घर आगणे, राल कूडीने कूड ।
 दुगंध दर्द बली बध्यां, मेरी जन्तु नां मुण्ड ॥४३॥
 'जननी' धनी जणनसूरी, बाकी समझी न कांड ।
 सन्तानो वणसी करे, कूर लजवी कमाइ ॥४४॥
 'बहु' धनी बरवश कियो, नरारे नचाव्यो हमेश ।
 सासु ससरा सन्तापिआ, भजव्यो डाकण वेप ॥४५॥
 'सासु' धनी हु पापिणी, बहुने दीधी गाल ।
 धरनी बनावी बैतरी, न गणी आपणी बाल ॥४६॥
 पाणी छाणीने राधणु, आदि जे घर काज ।
 वण जोवे जीव जमाडिया, बध्यु रोग नु राज्य ॥४७॥
 'साधु' थई पेट कारणे, पाल्यो नव आचार ।
 बहेमे बधाने भोलव्या, दरिण धोल्यु नाव ॥४८॥
 कौयो न लव उपदेश शुभ धम लई शास्त्राभ्यास ।
 कावे मों मायुं मले, वनुता सर्वे दास ॥४९॥
 गुरु थई 'वैठो' होस करी, कोटे घटी नु पड ।
 ज्ञान समाधि नेरे मुने, धूड्यो बुडाड्यो सर्व ॥५०॥
 जगलनी बुट्टी गणी, दीधी दोकडो रत ।
 अन्ध थद्वामें उतरी गयो, छेतस्या भगवन्त ॥५१॥
 (ते मुज मिच्छामि दुक्कड)

सुराना प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, नं० ४०२, अपर चितपुर रोड
(फूलझर) कलकत्ता ।
